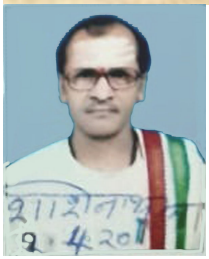

प्राचीन काल में जलप्राप्ति के साधन

(मिथिला के सन्दर्भ में)

मूल मैथिली से सम्पादक द्वारा अनूदित

डॉ.(प्रो.) शशिनाथ झा*

आज हमने तालाब को कूड़ादान बना डाला है; कूपों को भरकर उस पर मकान बना लिया, नदियों को तटबन्धों से घेरकर 'हैंगिंग रिवर' बना डाला, पेयजल को व्यर्थ 'बाइपास' कर डाला, तभी तो हम पानी पीने के लिए भी बाजार पर निर्भर हो गये हैं! बाजारवाद की देन हो या विकास के नाम पर अपभ्रष्ट मार्ग, दोनों ही स्थितियों में मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी तक प्यासे मर रहे हैं। जल-संकट से जूझते हुए हम भविष्य में और संकटग्रस्त होंगे। लेकिन सनातन धर्म की परम्परा में प्राचीन काल में जल-प्रबन्धन के लिए क्या-क्या उपाय किये गये, वे यहाँ पठनीय हैं।

प्राणरक्षक तत्त्वों में जल अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए जल के पर्यायवाची शब्दों में जीवन भी एक शब्द है- **पयः कीलालम् अमृतं जीवनं भुवनं जलम्।**[1] इसीलिए नदी के तट पर वास किया जाता रहा है। जल-प्राप्ति के दो स्रोत रहे हैं- 1. प्राकृतिक एवं 2. कृत्रिम। प्राकृतिक स्रोतों में वर्षा, नदी, झरना, झील, स्रोत, एवं देवखात (अनादि काल का अथाह गढ़ा) आते हैं, जो सृष्टि के आदिकाल से आज तक उपयोग में हैं। जल-प्राप्ति की दृष्टि से विश्व में देश दो प्रकार के होते हैं[2]-

1. देवमातृक- देव (मेघ) माता की तरह जहाँ पालन कर रहे हैं वह देश हुआ देवमातृक, केवल मेघ के जल से सिंचाई वाला देश।

2. नदीमातृक- नदी अथवा तालाब से सिंचित देश। यहाँ लोग केवल मेघ के भरोसे नहीं रहते हैं। जैसे मिथिला के वर्णन में लिखा गया है-

नदीमातृक देश सुन्दर सस्य सौं सम्पन्न।
समय सिर पर होय बरखा बहुत संचित अन्न॥
दयायुत नर सकल सुन्दर स्वच्छ सब बेबहार।
सकल विद्या उदधि मिथिला विदित भरि संसार॥[3]

इन दोनों प्रकार के देशों में प्राकृतिक के साथ-साथ कृत्रिम जलाशय जगह-जगह पर मिलते हैं। कृत्रिम अर्थात् मनुष्य के द्वारा निर्मित जलाशयों के मुख्यतः आठ भेद होते हैं-

सद्भिर्जलाशयः कार्यो यत्नाद् याम्योत्तरात्मकः।
कूप-वापी-पुष्करिण्यो दीर्घिका द्रोण एवं च।
तडागः सरसी चैव सागरश्चाष्टमः स्मृतः॥[4]

जल के आशय=आधार हुआ- जलाशय, उसे यत्नपूर्वक बनाना चाहिए; और वह दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बा हो। अर्थात् पूरब से पश्चिम अधिक विस्तार नहीं हो। इसलिए गोलाकार कूप और समचतुष्क (लम्बाई-चौड़ाई बराबर) पुष्करिणी (छोटा तालाब) को छोड़कर सभी जलाशय आयताकार होते हैं, जिसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण अधिक होती है।

1. अमरकोष, 1.10.3
2. वाचस्पत्यम् (शब्दकोष), देवमातृक शब्द
3. चन्दा झा, मिथिलाभाषा रामायण, बालकाण्ड, अध्याय-6
4. वायुपुराण, जलाशय प्रकरण

* कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा।

जलाशय अपने परिसर अथवा घर से पूर्व-दक्षिण, पश्चिम-दक्षिण और पश्चिम-उत्तर कोण में उत्तम नहीं होते हैं-

वापीं कूपं तड़ागं वा प्रासादं वा निकेतनम्।
न कुर्याद् वृद्धिकामस्तु अनलानिलनैर्ऋतैः॥[5]

शास्त्रानुसार धनवान् के चाहिए कि इष्ट और पूर्त इन दोनों प्रकार के धर्म का पालन निष्ठा एवं उदारता से करें जिससे अपने साथ-साथ लोगों का भी उपकार होता है। इष्ट हुआ धर्म- अग्निहोत्र (हवन), तपस्या, सत्यव्रत, वेद का अध्ययन और तदनुसार आचरण, अतिथि-सत्कार, और बलिवैश्वदेव (नैवेद्य का उत्सर्ग)। पूर्त हुआ लोकपालन सम्बन्धी कार्य- कूप, वापी, तड़ाग, देवमन्दिर, मार्ग, अन्नदान, बगीचा, पुष्पवाटिका आदि का निर्माण। इन सभी कार्यों में महान् धर्म और उन्नति होती है।[6]

कूप

सबसे छोटा जलाशय कूप गोलाकार होता है, जिसका व्यास न्यूनतम ढ़ाई हाथ और अधिकतम छह हाथ होता है। यह सामान्यतः 60 हाथ गहरा अथवा जितना नीचे स्वच्छ जल मिले- ऐसा होना चाहिए। यह कच्चा (विना ईंट का) तथा पक्का जगत (लहरा- मैथिली) सहित दो प्रकार के होते हैं। विस्तार के भेद से भी ये दो प्रकार के होते हैं- छोटा कुइयाँ और कुआँ (इन्नार- मैथिली)। शास्त्र में उल्लेख है-

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः।
बद्धोऽबद्धः स कूपः स्यात् तदम्भः कौपमुच्यते।[7]

अर्थात् थोड़ा विस्तार वाला गहरा गोलाकार गर्त कूप है, जो ईंट से बँधा अथवा विना बँधा भी होता है। इसके जल को 'कौप' कहते हैं जो पीने के लायक होता है। बाल्टी-रस्सी से खींचकर पानी ऊपर किया जाता है। जल निकालने के लिए तेकठी यन्त्र (ढेकुल- मैथिली) लगाया जाता है, अर्थात् तीन ओर से तीन अथवा चार बाँस को खड़ाकर अथवा लकड़ी का मजबूत खम्बा गाड़कर ऊपर में एक जगह मिलाकर रस्सी से बाँधकर गोल चक्की के आकार की मोटी लकड़ी उसपर देकर एक बड़ा और मोटा बाँस चौड़ा कर उसपर रखकर बाँस के शीर्ष पर रस्सी बाँधकर नीचे बाल्टी लटकाकर बाँस की जड़ वाले भाग पर ईंट, मिट्टी आदि का भार बाँधकर आसानी से पानी भरा जा सकता है। यह जल जाड़े के मौसम में गर्म तथा गर्मी में शीतल होता है। कहीं कहीं कुआँ के पास बड़ा-सा गढ़ा खोद दिया जाता है, जिसमें पशु-पक्षी जल पीते हैं, इसे संस्कृत में 'निपान' अथवा 'आहर्य'[8] कहा जाता है और मैथिली में 'आहर' कहते हैं।

सूखी नदी अथवा नदी के सुदूर बालू पर चार-पाँच हाथ नीचे में जल मिलता है, वहाँ छोटा, कच्चा कुआँ खोदा जा सकता है। इसे संस्कृत में 'कूपक' कहा जाता है। कूप को मुंडा (विना जगत का) भी रखा जाता था, जिसमें मनुष्य अथवा पशुओं के गिरने का डर रहता था। पक्के कूप के घेरे को दो हाथ ऊँचा कर दिया जाता है, जिससे गिरने का भय नहीं रहता है। इस घेरे को 'जगत' अथवा 'लहरा' कहते हैं। कुआँ के नीचे चारों और मूँठ बाँधे हाथ के बराबर जौमठि (जामुन की लकड़ी का आधार) दिया जाता है, जिसपर गोलाकार दीवाल खड़ी की जाती है। दीवाल में दो हाथ पर मोटे-मोटे लोहे के कड़े चढ़ने-उतरने के लिए डाल दिये जाते हैं। जौमठि कसैला स्वाद का रहने से वह पानी को शुद्ध करता

ढेकुल के सहारे कुएँ से जल खींचता हुआ एक बालक

5. देवीपुराणम् 6. जतूकण्यस्मृति 7. आदित्यपुराण

है, लेकिन इस जल में पकाया हुआ चावल लाल (जामुन के रंग का) और दाल विना सीझा हुआ रह जाता है। समय-समय पर इसकी सफाई और चूने से शुद्धीकरण किया जाता है। कूप से पानी निकालकर घड़ा में डालकर घड़े को माथे पर अथवा कमर पर रखकर घर लाकर घैलची (घड़ा रखने की ऊँची जगह) पर ढँककर रखा जाता था।

जल भंडारण की जगह- **घैलची**

वापी

इसे 'वाउली' कहा जाता है, जो अब मिथिला में नहीं, पश्चिम के प्रान्तों में काशी आदि में देखा जाता है। यह आयताकार होता है, जिसके पूरब, पश्चिम और उत्तर दिशा में सीधा दीवाल रहता है, केवल दक्षिण दिशा से उतरने के लिए चौड़ी सीढ़ियाँ रहती है। कूप में ऊपर से ही पानी भरना पड़ता है, लेकिन वापी में सीढ़ी से नीचे उतरकर जल लिया जा सकता है।

कूपः अद्वारको गर्तः वापी तु बद्धसोपानका।[9]

पल्वल

छोटा तालाब, जिसे मैथिली में 'चभच्चा' या 'डाबर' कहा जाता है। वासभूमि यानी डीह को भऱने के लिए घर के आगे, पीछे, उत्तर या दक्षिण डाबर खुदबाया जाता था, जिसमें मछली पाली जाती थी।

तालाब

पुष्करिणी में जल रहने की जगह (पनिझाओ- मैथिली) 20 हाथ ×20 हाथ चौकोर होता है। इसके अतिरिक्त चारों ओर दस हाथ का आँगन और उससे बाहर भिंडा (महार- मैथिली) होता है। इसमें घाट बना दिया जाये तो उत्तम, नहीं तो लड़की अथवा पत्थर के 'दारु' पर कपड़ा आदि की सफाई की जाती है। स्नान, वस्त्र-बर्तन आदि धोना, पशुओं के जल पीने के लिए तथा सिंचाई के लिए इसका उपयोग होता है। लोगों के पीने के लिए कुआँ, वाउली, नदी और झरने के जल का उपयोग होता है।

चार हाथ का एक धनुष अथवा धन्वन्तर होता है। एक सौ धन्वन्तर की पुष्करिणी होती है। इसके पाँच गुणा बड़ा तड़ाग (बड़ा तालाब)[10] होता है। तदनुसार 20×20 हाथ=400 वर्ग हाथ ÷4 =100 धनुष पुष्करिणी, 300 धनुष दीर्घिका (लम्बाई अधिक तथा चौड़ाई कम), 400 धनुष द्रोण, 500 धनुष तड़ाग=50×40 हाथ=2000 वर्ग हाथ÷4 =500 धनुष। यह नाप केवल पानी रहने की जगह का है, आङन और भिंडा इससे अतिरिक्त हुए।[11] इससे बड़े तालाब को सागर कहते हैं, जैसे दरभंगा में – गंगासागर, लक्ष्मीसागर, मधुबनी में- गंगासागर, सरिसब में रतनसागर, अदलपुर में –सुन्दर सागर, बेहट में सुनरसाइर, रतनसाअर आदि।

यद्यपि दिर्घिका (दिग्घी) 300 धनुष का होता है तथापि मत्स्यपुराण के अनुसार अतिबृहत् जलाशय जिसकी लंबाई उसकी चौड़ाई से दूनी-तिगुनी हो उसे दिग्घी कहेंगे, जैसे दरभंगा में चन्द्रधारी संग्रहालय के पास दिग्घी, संस्कृत विश्वविद्यालय के पीछे सुखी दिग्घी आदि।

इनके अतिरिक्त राजभवन के चारों ओर खोदी गयी परिखा (मै.- गढ़खई), घर के समीप का खत्ता, डबरा, डबरी, कियारी, आदि भी जल के आश्रय हैं। खत्ता खुदाने में भी पुष्य कहा गया है। धर्म के नाम पर कितने लोगों का कल्याण होता था यह इस विवरण से जाना जा सकता है।

8. अमरकोष, वारिवर्ग, मुकुन्द झा बक्शी कृत मैथिली व्याख्या, सम्पादक डॉ.शशिनाथ झा
9. वाचस्पति मिश्र, द्वैतनिर्णय 10. आदित्य-पुराण 11. वसिष्ठ-संहिता

यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते।
खानयेत् स दिवं याति बिन्दौ बिन्दौ शतं समाः॥[12]

जो व्यक्ति निर्जल प्रदेश में जलाशय खुदबाते हैं वे उनकी एक-एक बूंद जल के सौ वर्ष तक स्वर्ग में वास करते हैं। यही फल इनके जीर्णोद्धार में कहे गये हैं।[13]

दस कुआँ खुदबाने का फल एक वापी खुदबाने में, दस वापी का फल एक ह्रद (दह या महातड़ाग) बनबाने में, दस दह के तुल्य एक पुत्र उत्पन्न करने में तथा दस पुत्र के तुल्य एक वृक्ष के रोपने से फल मिलता है-

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमो पुत्रो दशपुत्रसमस्तरुः॥[14]

इन सभी कृत्रिम जलाशयों का उत्सर्ग (सार्वजनिक उपयोग हेतु विधिवत् त्याग) आवश्यक कहे गये हैं। इनके लिए जलाशय-संस्कार (यज्ञ के द्वारा) आवश्यक है।

सदाजलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम्।
कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्पृष्टव्यमसंस्कृतम्॥[15]

पूजन-हवन-पञ्चगव्यादि प्रक्षेप से जलाशय का संस्कार विधानपूर्वक करने के बाद सकल जन्तु के लिए उसे उन्मुक्त छोड़ दिया जाये। इससे जल में दिव्य तत्त्व का वास हो जाता है और सभी लोग बेरोक-टोक व्यवहार कर सकेंगे।[16] 'कूपयागविधि' एव म.म. रघुपति कृत 'तडागयागपद्धति' 'वर्षकृत्य' के द्वितीय भाग में उपलब्ध है।[17]

तालाब के यज्ञ में 'जाठि' (<यष्टि- संस्कृत) गाड़ा जाता है, बीचो-बीच में। यह 18 से 24 हाथ तक का होता है, जो तालाब के भिंडा से अधिक ऊँचा न हो। बिना याग का तालाब 'कुँवारी' रहता है और याग के बाद 'शादीशुदा' माना जाता है।

नदी

प्राकृतिक जलाशय में गर्त, नदी, नद, ह्रद, सरसी, सरोवर, झील और समुद्र आते हैं। आठ हजार धनुष से कम दूरी तक बहनेवाली धारा को गर्त कहते हैं, नदी नहीं। इससे अधिक दूर तक प्रवाह वाली नदी कहलाती है।

धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते।
न ता नदीशब्दवाच्या गर्तास्ते परिकीर्तिताः॥[18]

तदनुसार 32 हजार हाथ से अधिक लम्बाई में नदी का होना आवश्यक है। एक हजार धनुष का एक कोस होता है। तदनुसार आठ कोस से लम्बी को नदी कहेंगे– कमला, कोशी, वाग्मती, गण्डकी ये सब नदियाँ हैं। ऐसे जलप्रवाह क नाम यदि पुंलिंग हों तो ये नद कहलायेंगे- ब्रह्मपुत्र, सोन, सिन्धु, दामोदर। समुद्र में मिलनेवाला ब्रह्मपुत्र और सिन्धु महानद और गंगा, गोदावरी आदि महानदी कहलाती हैं। नदी के प्रवाह में या किनारे में दलदल भरा हुआ महागर्त मोनि (ह्रद) कहलाता है, जिसे मैथिली में दह कहते है- कालीदह, नागदह, हथिहद आदि।

प्राकृतिक तालाब जो अनादि काल से देवमन्दिर के समीप हैं देवखात कहलाते हैं- जैसे कपिलेश्वर का तालाब।

नदी की बाढ़ में फैला हुआ पानी नदी के द्वारा बनाये गये गर्त में यदि रहे जाये और नदी से उसका सम्पर्क टूट जाये तो वह नदी के समान पवित्र नहीं माना जाता है, लेकिन वह स्नान करने के योग्य होता है, लेकिन गंगा नदी का ऐसा गर्त अपवित्र हो जाता है, उसमें स्नान भी नहीं करना चाहिए। मृत नदी (मरन धार) में बरसात में पानी भर जाता है और फाल्गुन तक आते

12. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 13. नन्दि-पुराण 14. उपवनविनोद, सम्पादक डॉ.कृष्णानन्द झा
15. नन्दिपुराण 16. मत्स्यपुराण में जलाशयसम्बन्धी सभी बातें विस्तार से वर्णित हैं।
17. वर्षकृत्य द्वितीय भाग, पं. रामचन्द्र झा 18. रघुनंदनभट्टाचार्यः, तिथितत्त्वम्

करीन से सिंचाई करता हुआ किसान

सिंचाई के लिए प्रयुक्त रहट

आते सूख जाता है उसे 'नदीखेत' अथवा 'डोंरा' कहा जाता है। उथला झील, जिसमें धान उपजता हो और फाल्गुन तक खेत सूख जाये, उसे 'चौर-चाँचर' कहते हैं।

इन सभी जल स्रोतों से सिंचाई, मत्स्यपालन, मखाना उत्पादन, कमल फूल की खेती, भेंट के बीज (चावल) की खेती, करहड़, सारुक आदि कन्दों की उपलब्धि होती है, जो भोजन के काम में आते थे। इनमें क्रौंच (सारस), बगुला, हंस, सारस, चकबा, सिल्ली, कुररी, शरारि, नकटा, दिघोंच, आदि जलचर पक्षी निवास करते हैं। सीप, डोका, कछुआ आदि जलजीव रहते हैं।

सिंचाई के साधन-

एक खेत से दूसरी खेत में थाली से उपछा जाता है। कूप से रहट के द्वारा, तालाब आदि से लकड़ी के करीन, हुचुक, ढोइस (कनस्तर=टीन या कंटर को रस्सी में बाँधकर दो आदमी से खींचकर) के द्वारा सिंचाई नाली बनाकर की जाती है।

इस प्रकार गाँव-गाँव में जल-संसाधन से सम्पन्न मिथिला वर्तमान समय में केवल यन्त्रधीनता की ओर तेजी से आगे बढ़ रही है जो अच्छा लक्षण नहीं है। अपने प्राचीन वैज्ञानिक जल संसाधनों की रक्षा आवश्यक एवं उपयोगी है।

***

अग्रिम अंक जगन्नाथ-विशेषांक का विशेष आकर्षण

चतुर्भुज दास कृत जगज्जीवनचरितम्

दादू-पन्थ के सन्त जगजीवन दास का यह चरित संस्कृत भाषा में सन्त चतुर्भुज दास ने 'जगज्जीवनचरितम्' के नाम से लिखी है। अभी यह पाण्डुलिपि के रूप ही उपलब्ध है। इसमें अनुष्टुप् छन्द के कुल 78 श्लोक हैं। इसका सम्पादन पं. भवनाथ झा के द्वारा किया जा चुका है। आषाढ, 2078 के अंक में इसका प्रकाशन होगा।